Chap-6

षष्ठ अध्याय
उपसंहार

उपसंहार : अध्याय का सारांश

हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचंद का स्थान सर्वोपरि है। वैसे तो बहुत सारे कथाकार हुए हैं लेकिन प्रेमचंद की प्रासंगिकता सदैव हमारे बीच में बनी रहेगी। उन्होंने समाज हो रहे और जो सदियों से एक परिपाटी के रूप में चले आ रहे थे उसे एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया और अपनी अभूतपूर्व मानवीय संवेदना से उसमें प्राण प्रतिष्ठा की। "हिन्दी के एक असंदिग्ध शिल्प-स्वामी अज्ञेय जी ने भी यह सहर्ष स्वीकार किया है कि प्रेमचंद जी आज भी हमारे लिए प्रेरणा के ज्योति स्तम्भ हैं।[1]

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में प्रेमचंद के कथेतर साहित्य का लेखा जोखा देने का प्रयास किया गया है। प्रारंभ में प्रेमचंदयुगीन समस्याओं का जैसे-सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, समसामयिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का विश्लेषण करते समय मैंने पाया कि आज भी हमारे समाज में उनके समय की समस्याएँ विद्यमान हैं पर उनका स्वरूप बहुत कुछ बदल गया है। प्रेमचंद जी ने जिस समय साहित्य की दुनिया में प्रवेश किया उस समय हमारा देश को आजादी पाने के आसार नजर आ रहे थे। उस समय पूरा देश राजनीति की चपेट में आ चुका था। प्रेमचंद ने जिस समय अपना साहित्यिक-जीवन आरम्भ किया था, उस समय हिन्दी साहित्य में परम्परागत रुढ़ियों, सदियों से चल रहे रीति-रिवाजों और सामाजिक संस्कारों के प्रति बगावत का, स्वछंद और सुखद वातावरण में साँस लेने की आकांक्षा का तथा व्यक्तिगत सम्मान और राष्ट्रीय गौरव की तीव्र भावना का थोड़ा तो आभास हो ही गया था।

शोध के दौरान मैंने पाया कि प्रेमचंद जी ने जिस समय साहित्य की दुनिया में प्रवेश किए, उस समय हिन्दी-साहित्य में परम्परागत रुढियों, मुर्दा रीति-रिवाजों और सामाजिक संस्कारों के प्रति विरोध का, मुक्त और सुखद वातावरण में साँस लेने की आकांक्षा का तथा व्यक्तिगत सम्मान और राष्ट्रीय गौरव की तीव्र भावना का थोड़ा बहुत आभास तो मिलने लगा था, पर आग्रह के साथ जीवन की वास्तविकताओं के निकट आने तथा आज की अंधकारपूर्ण अवस्था से मुक्त होकर

एक नए समाज के लिए कटिबद्ध होने की अडिग आकांक्षा यानि, कष्ट एवं यातनाएँ भोगने वाले संसार की छटपटाती सजग आत्मा की ही अभिव्यक्ति--उस रूप में उभरकर नहीं आयी थी, जिस रूप में की वह उनके साहित्य से उभरकर सामने आयी है। पहले ये तत्त्व वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं से ही उद्भूत क्रमहीन और अन्विति-शून्य थे।

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में व्यवस्था के प्रति सिर्फ व्यक्ति ही अपनी छिटपुट प्रतिक्रिया नहीं करता, बल्कि पूरा समाज ही अपनी अनवरत-अप्रतिहत तथा क्रमशः सघनतर प्रतिक्रिया करता है। व्यक्ति, प्रेमचंद में बहुत कुछ मौन है, वह प्रतीक बनकर सामने आने लगता है। यहाँ प्रतिक्रिया का धरातल पूरी की पूरी व्यवस्था है। उनके यहाँ विचित्र घटनाएँ नहीं होतीं, असाधारण और आदर्श चरित्र नहीं होते। उनके उपन्यास जीवन-कथा होते है जिनमें हम नायक और नायिकाओं को भिन्न-भिन्न, पर रोज आने वाली परिस्थितियों में, सुख और दुख, द्वेष और मैत्री, निन्दा-प्रशंसा, त्याग-स्वार्थ के बीच से गुजरते हुए देखते हैं-उसी तरह से जैसे हम स्वयं उन्हीं अवस्थाओं, आंतरिक और बाह्य स्थितियों और क्राइसिसों में होकर गुज़र रहे हों। वह उछल-कूद, वह तोड़-मरोड़, गर्जन-तर्जन, कृत्रिम गुलकारी, बाजार में बिकने वाली सजावट, नवीनता पैदा करने का वह सचेष्ट प्रयत्न नहीं है जो अक्सर विलास और मनोरंजन की वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले कथाकार किया करते हैं। उनको कथाओं का उद्देश्य मनोरहस्य और बाह्य-सामाजिक और आर्थिक संघर्षों के अतल में बहने वाले स्रोतों को समझाना है-देश के राष्ट्रीय जीवन में रिसने वाली वेदना के ज्ञात-अज्ञात फफोलों को आश्वस्त चितवन से दिखलाते हुए पीड़ित, शोषित और दलित भारतीय मानव के विद्रोही आत्म-गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखना है। कथा और पात्र का यह सांस्कृतिक और जनजीवन की कर्मभूमि पर स्थित साहित्यिक साधारणीकरण, हिन्दी को ही नहीं, समस्त भारतीय कथा-सााहित्य को प्रेमचंद की अप्रतिम देन है।

साहित्य जन-जीवन की अभिव्यक्ति होती है। प्रेमचंद जी ने समाज के हर पहलू पर प्रकाश डाला है। साहित्य के निर्माण में युगीन चेतना का अर्थात् देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं समसामयिक परिस्थितियों का विशेष योगदान होता है। साहित्य के विभिन्न रूप युगीन चेतना की मिट्टी में ही निर्मित होते हैं।

प्रेमचंद जी के संपूर्ण कथा-साहित्य पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि उनके कथा-साहित्य में क्रमशः दिखती है। प्रारंभ में वे आदर्शवादी थे, जैसे हर पीड़ित व्यक्ति होता है, परन्तु बाद में क्रमशः आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से होते हुए यथार्थवाद की ओर अग्रसर हुए हैं।

इस शोध के दौरान मैंने पाया कि प्रेमचंद जी का जीवन कितना कष्टमय था फिर भी उन्होंने जीवनभर संघर्ष किया और समाज के हर पहलुओं पर अपनी दृष्टि डाली। पर आग्रह के साथ जीवन की वास्तविकताओं के बिल्कुल निकट आ जाने तथा आज की अंधकारपूर्ण अवस्था से स्वंतत्र होकर एक नया समाज के लिए कटिबद्ध होने की अडिग इच्छा - यानि कष्ट और तरह-तरह से प्रताड़ित होने वाले दुनिया की छटपटाती सजग आत्मा की ही अभिव्यक्ति - उस रूप में उभरकर सामने नहीं आई थी; जिस रूप में कि वह उनके कथा-साहित्य में उभरी। पहले ये सारे तत्त्व वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं से ही उद्भूत क्रमहीन और अन्वित शून्य थे।

इस शोध के दौरान हमने पाया कि प्रेमचंद के साहित्य में व्यवस्था के प्रति सिर्फ व्यक्ति ही अपनी छिटपुट प्रतिक्रिया ही नहीं करता है, बल्कि व्यक्ति प्रेमचंद में बहुत कुछ मौन ही है, वह दूसरों के माध्यम से प्रतीक के रूप में आते हैं। यहाँ प्रतिक्रिया का धरातल पूरी की पूरी व्यवस्था है। उनके यहाँ अजीबों-गरीब घटनाएँ नहीं होती हैं, असाधारण और आदर्श चरित्र नहीं होते। उनका साहित्य जीवन-कथा से जुड़े होते हैं जिनमें हम नायक और नायिकाओं को अलग-अलग, पर हररोज आने वाली परिस्थितियों में, सुख और दुःख, द्वेष और मैत्री, निन्दा-प्रशंसा, त्याग-स्वार्थ के बीच से गुजरते हुए हम देखते हैं - ठीक ही उसी तरह से जैसे हम खुद उन्हीं अवस्थाओं, आंतरिक और बाह्य स्थितियों और क्राइसिसों से होकर गुजरते हैं। वह उछल-कूद, वह तोड़-मरोड़, गर्जन-तर्जन, बनावटी गुलकारी, बाजार में बिकने वाली सजावट, नवीनता पैदा करने का वह सचेष्ट प्रयत्न नहीं है जो प्रायः विलास और मनोरंजन की वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले कथाकार ही किया करते हैं।

मैंने इस शोध के दौरान पाया कि प्रेमचंद जी की कथाओं का उद्देश्य प्रायः यही रहता है कि मनोरहस्य, बाह्य सामाजिक और आर्थिक संघर्षों के अतल में बहने वाले स्रोतों को समझाना - देश के राष्ट्रीय जीवन में रिसने वाली करुणा के ज्ञात - अज्ञात फफोलों को आश्वस्त चितवन से दिखलाते हुए पीड़ित, शोषित

और दलित भारतीय मानव के विद्रोही आत्म गौरव को अक्षुण्ण बनाए रखना है। कथा-पात्र का यह सांस्कृतिक और जन-जीवन की कर्मभूमि पर स्थित साहित्यिक साधारणीकरण, हिन्दी को ही नहीं, समस्त भारतीय कथा-साहित्य को प्रेमचंद की अप्रतिम देन है।

बर्नार्ड शॉं ने शाश्वत साहित्य के प्रेमपरक रूप पर कशाघात करते हुए जब यह घोषणा की थी कि -

"The man who writes about himself and his own time is the only man who writes about all people and about all time."

तो निश्चयात्मक रूप से यही सिद्धांत प्रतिपादित किया था कि सच्चा साहित्यकार समय का सपूत ही हुआ करता है और समय देवता के अनंत हाथ और पैर हैं - वह अनंत काल से, अनंत प्रणालियों से, अनंत रूपों में अपने आपको सबके सम्मुख रखता है और हमारे लिए उसके सभी क्रिया-कलापों का प्रतिफल है हमारा जीवन, हमारा समाज और हमारी वास्तविकताएँ। प्रेमचंद के कथा-साहित्य को एक वाक्य में यह कहा जा सकता है कि समय देवता के इसी महानृत्य से व्युत्पन्न हमारे सामाजिक संघर्ष का साहित्य है, वह समसामयिक भारतीय जीवन के विविध चित्रों के क्रमबद्ध नियोजित एक अलबम की भाँति हैं। उभरती हुई पूँजीवादी सभ्यता, उसका नगर-जीवन पर प्रबल प्रभाव तथा ग्रामीण जीवन पर तिर्यक् प्रभाव - प्रेमचंद का यही कथा क्षेत्र है।

प्रेमचंद जी का आविर्भाव-काल भारतीय जीवन की जटिलता का काल है, असंगतियों का युग है, जिसका उन्होंने पूरा-का-पूरा लाभ उठाया है। इसीलिए हम उनकी प्रतिभा को आदर्श से यथार्थ की ओर सतत गतिशील पाते हैं। प्रारम्भिक लेखन में वे जिस आस्था को लेकर आए थे, अन्तिम समय तक आते- आते उनके निजी जीवन और साहित्य के संदर्भ में हम उसे शत-शत वर्गों में चूर्ण होते हुए पाते हैं। इस नजरिए से देखने पर लगता है कि इनका कथानक एकांतिक रूप से नगर है, इनकी समस्याएँ एकोन्मुख और केन्द्रित हैं। प्रेमचंद के कथा-साहित्य में एक-एक करके उन दुखती रगों को टटोलते हुए नजर आते हैं जिनका अनुमान कर वे मर्म के उस व्रण तक पहुँच जाए जिसके चलते यह सारा समाज और जीवन ऐंठ-ऐंठकर, सिकुड़-सिकुड़ कर छटपटा रहा है।

इस शोध के दौरान हमने पाया कि प्रेमचंद जी के समय की चेतना राष्ट्रीय स्वाधीनता से जुड़ी हुई थी और उसी दौरान प्रेमचंद जी ने प्रगतिशील आंदोलन की शुरूआत भी किया था। प्रगतिशील आंदोलन पर मार्क्स का पूरा-पूरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। प्रेमचंद जी मार्क्सवाद के प्रबल समर्थक थे। मार्क्स का मानना है कि युग विशेष में कवियों या लेखको का एक ही आदर्श नहीं होता है। कुछ लेखक या कवि तो ऐसे होते है कि राजसत्ता और राज्य-विधियों के समर्थक होते है और कुछ तो ऐसे भी होते है कि उनका जमकर विरोध करते हैं और नई व्यवस्था लाने के लिए अपने-अपने विचारों को भी व्यक्त करते है। सच्चे अर्थो में मैंने यही जाना है कि जो विरोधी होते है और नई व्यवस्था लाना चाहते हैं, वे ही प्रगतिशील के रूप में जाने जाते है। जितनी भी स्वतंत्रता संग्राम संबंधी आंदोलनें हुई उन सभी आंदोलनों का हमारे साहित्य पर भी समयानुसार प्रभाव पड़ता गया।

इस शोध के दौरान मैंने पाया कि प्रेमचंद जी एक अच्छे कथाकार के साथ ही साथ एक अच्छे निबंधकार के रूप में भी देखना चाहिए। उन्होंने अपने निबंधों के माध्यम से साहित्य की परिभाषा दी है; उनका मानना है कि 'जीवन की आलोचना' ही साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।[2]

प्रेमचंद की साहित्य साधना इस बात का साक्ष्य है कि उन्होंने जिन्दगी की चुनौतियों को साहस के साथ स्वीकारा और समय के एक-एक तेवर को पहचानते हुए अपनी रचनाओं में उन्हें इस तरह से प्रस्तुत किया कि वे समय और जिन्दगी के प्रामाणिक दस्तावेजों के रूप में अपनी पहचान बना सकें। हम तब तक तो यह नहीं कहेंगे कि प्रेमचंद ने अपने साहित्य की इमारत शून्य से खड़ी की किन्तु इतना सब लोग जानते हैं कि प्रेमचंद के परिवेश में ऐसा कुछ नहीं था जो उन्हें लेखक बनने की प्रेरणा देता। घर, परिवार और परिवार के बाहर की स्थितियाँ ऐसी थीं कि निर्वाह लायक नौकरी पाकर गृहस्थी की गाड़ी को आगे बढ़ा ले जाने को ही औसत आदमी जिंदगी की सार्थकता मान सकता था। किंतु ऐसे परिवेश में भी प्रेमचंद ने एक सपना देखा और एक लेखक के रूप में ही अपनी पहचान कायम की। इसे परिवेश पर रचनाकार की आस्था की विजय न कहा जाए तो और क्या कहा जाए।[3]

इस शोध के दौरान यह बिंदु मुख्य रूप से सामने आती है कि प्रेमचंद को सिर्फ कहानीकार के रूप में ही नहीं बल्कि पत्रकार के रूप में भी देखा जा सकता है। उन्होंने टिप्पणी लेखन से की थी जो 'आवाजे खल्क' में 1 मई 1903 से 24 सितम्बर 1903 तक धारावाहिक में छपी थी। इस पत्र के अतिरिक्त भी 'स्वदेश' और 'मर्यादा' में भी मुंशी जी रिपोर्ताज और टिप्पणियाँ लिखा करते थे। उर्दू के प्रसिद्ध पत्र 'जमाना' से तो मुंशी जी रपटों व टिप्पणियों के अलावा 'रफ़्तारें जमाना' के नाम से एक स्थायी स्तंभ भी लिखते रहे थे।

प्रेमचंद की पत्रकारिता से हम यह सीख ले सकते हैं कि रपट या टिप्पणी कलेवर में जितनी छोटी हो, उसकी संप्रेषणीयता उतनी बेधड़क व शक्तिशाली होनी चाहिए और वक्तव्य इतना स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कोई उसकी उपेक्षा नहीं कर सकें। मसलन 'हंस' के फरवरी 1934 के अंक में प्रकाशित 'जाति भेद मिटाने की एक आयोजना' शीर्षक प्रेमचंद की एक छोटी-सी रपट को देखा जा सकता है। इस रपट की पहली ही पंक्ति में यह सूचना दी गई है कि बंबई के मिस्टर बी. यादव ने वर्तमान भेद-भाव को मिटानें के लिए यह प्रस्ताव किया है कि सभी हिन्दू-उपजातियों को ब्राह्मण कहा जाए और हिन्दू शब्द को उड़ा दिया जाए जिससे भेद-भाव का बोध होता है।[4] उसके ठीक बाद ही प्रेमचंद टिप्पणी करते हैं - प्रस्ताव बड़े मजे का है। हम उस दिन को भारत के इतिहास में मुबारक समझेंगे, जब सभी हरिजन ब्राह्मण कहलाएँगे। दरअसल प्रेमचंद को पीड़ा यह है कि हम पहले, ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य या हरिजन हैं, पीछे आदमी।

यह वर्णगत, जातिगत भेदभाव हमारे रक्त में पूरी तरीके से रच-बस गया है, इतना ही नहीं लोग सांप्रदायिकता का बिगुल बजाकर अपनी गर्दन ऊँची करते हैं। नहीं तो अपने-आप को सवर्ण कहने की ही क्या बात है। हंस के ही जनवरी 1934 के अंक में प्रेमचंद की बिल्कुल छोटी-एक पैर की टिप्पणी छपी है, जिसका शीर्षक है -[5]'अच्छी या बुरी सांप्रदायिकता'। इसमें मुंशी जी लिखते हैं कि इंडियन सोशल रिफार्मर नामक पत्र में कहा है कि सांप्रदायिकता अच्छी भी है और बुरी भी है। बुरी सांप्रदायिकता को उखाड़नी चाहिए, मगर अच्छी सांप्रदायिकता तो वह है, जो अपने क्षेत्र में बड़ा उपयोगी काम कर सकती है, उसकी क्यों अवहेलना की

जाए। इतनी जानकारी देने के बाद प्रेमचंद वापस टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि - अगर सांप्रदायिकता अच्छी हो सकती है तो पराधीनता भी अच्छी हो सकती है, झूठ भी अच्छा हो सकता है। जात-पात और सांप्रदायिकता की जिस समस्या को मुंशी जी ने आज से 75 वर्ष पहले अपनी छोटी-छोटी टिप्पणियों के माध्यम से उठाया था, वह आज़ भी हमारे समाज में ज्यों की त्यों विद्यमान ही है, बल्कि उसके खतरे घटने के बजाए बढ़ते ही जा रहे हैं।

प्रेमचंद की पत्रकारिता मुद्दों पर केन्द्रित रहती थी। उन्होंने हर विषय पर कलम चलाई। स्वाधीनता संग्राम, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति, हिन्दू-मुसलमान, छूत-अछूत, किसान-मजदूर, नागरिक शासन, साहित्य-दर्शन, धर्म-समाज, शिक्षा-संस्कृति, महिला जगत से लेकर राष्ट्रभाषा से जुडें तमाम मुद्दों पर मुंशी जी ने रिपोर्ताजि, टिप्पणियाँ व लेख लिखें।[5] प्रेमचंद ने सिर्फ पत्रकारिता ही नहीं बल्कि संपादन का कार्य भी किया। उन्होंने 1933-34 में 'जागरण' साप्ताहिक का संपादन किया तो 1930-36 तक मासिक 'हंस' का। प्रेमचन्द जिस धर्म बुद्धि से 'जागरण' व 'हंस' का संपादन करते थे, वह जनता के हित मे बँधी थी। मुंशी जी के संपादकीय संस्पर्श ने 'जागरण' व 'हंस' को आदर्श पत्र ही नहीं बनाया, दोनों को अपार लोकप्रियता भी हासिल हुई।

संपादक के रूप में प्रेमचंद प्रतिकूलताओं के बीच खड़े होकर भी अपने धवल चरित्र व ऊँचे मनोबल से अंग्रेजी साम्राज्यवाद का डटकर विद्रोह करते थे। मुंशी जी एक तरफ तो अपने पाठकों को ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ महात्मा गाँधी के आंदोलनों में भाग लेने के लिए प्रेरित करते हैं तो दूसरी ओर अंग्रेजी शासन के तंत्रों व नृशंसता का तीव्र प्रतिवाद भी करते हैं। इसीलिए 'जागरण' व 'हंस' को कई बार ब्रिटिश शासन का कोपभाजन भी बनना पड़ा। 'जागरण' के 12 दिसम्बर 1932 के अंक में प्रेमचंद ने स्वयं इस कोप का ब्यौरा दिया है, हंस की जमानत से हाल फिलहाल ही उससे उनका गला छूटा है। पाँच महीनों तक उनका पत्र लिखने का सिलसिला बंद रहा। इसीलिए प्रेमचंद जल्दी ही जमानत का हुक्म पाकर परेशान से हो गए। इस टिप्पणी में प्रेमचंद लिखते है कि - ऐसे वातावरण में जबकि हर संपादक के सिर पर तलवार लटक रही हो, राष्ट्र का सच्चा राजनीतिक विकास नहीं हो सकता। प्रेमचंद ने उस तलवार की परवाह नहीं की।

इस शोध के दौरान मैंने पाया कि प्रेमचंद जी एक सफल नाटककार और एकांकीकार भी हो सकते थे परन्तु उन्होंने ज्यादा नाटक और एकांकियों की रचना नहीं की। नाटकों में उन्होंने स्वार्थ लोलुपता, हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष अंतर्जातीय संघर्ष हर जगह पर विद्मान है। एकांकी में तो धर्म के ठेकेदारों के बारे में अपना विचार व्यक्त किया है। प्रेमचंद जी ने जिस समस्या को अपने समय में उठाया था वह समस्या आज भी हमारे समाज में घटित तो हो रही है परंतु उसका स्वरूप कुछ अलग है। संकीर्ण विचारधारा वाले लोगों की कमी आज भी हमारे समाज में नहीं है बल्कि हर जगह मौजूद ही है। अगर हम विवाह की समस्या को दूर करना चाहते हैं तो हमें अपने समाज से बाहर निकलना होगा तभी हम इस समस्या से छुटकारा पा सकते हैं। धर्म के आड़ में आज भी न जाने कितने लोगों को बलिदान होना ही पड़ता है। उनकी एकांकी से हमें यह समझ में आता है कि उन्होंने उस समय भी ऐसी बात की कल्पना कर ली थी जो आज भी हमारा समाज कुछेक को छोड़कर अपनाने से कतराते हुए नजर आते हैं।

इस शोध के अंत में मैंने पाया कि प्रेमचंद जी के समय में भी बाजारवाद, पूँजीवाद, उपभोक्तावाद आदि समस्याएँ उनके सामने घटित होती रहती थीं। किस तरह व्यक्ति एक बार कर्ज के बोझ से अगर दब गया तो उसकी पुश्त-दर-पुश्त किस प्रकार से वह ऋण हर जन्म में उन्हें भरना पड़ता था। कर्जदार को उनके पूर्वज अगर कुछ पुश्तैनी छोड़कर जाते थे तो वह था ऋण जो उन्हें ताउम्र भरनी पड़ती थी।

औद्योगिक क्रान्ति से विकसित पूँजीवादी व्यवस्था में जीवन की जटिलता को अनेकों गुना बढ़ा दिया है। ऐसी स्थिति में मानव जीवन एवं समाज-जीवन को यथार्थ एवं समग्र रूप से संप्रेषित करने के लिए प्रेमचंद जी का कथा-साहित्य सर्वथा उपयुक्त संवाहक एवं सशक्त माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। किसी भी व्यक्ति के सामान को जबरन हड़प लेना जमींदारों को भलीभाँति आता था। किसी भी तरह से वह हड़प लेने में अपनी शान समझते थे। आज भी वही समस्या हमारे समाज में विक्रील रूप धारण किए हुए है। सारी दुनिया को एक बनाने का सपना प्रेमचंद जी ने भी अपनी आँखों में संजोया था कि सारी पृथ्वी के लोग एक हो सभी भूमण्डलीकरण से प्रभावित हों सभी एक दूसरे को अपना समझें, आज भी

यही प्रयास जारी है। प्रेमचंद जी के समय में उत्तर भारत की उपनिवेश की राजनीति जैसे थी आज भी वही है परंतु उसका स्वरूप कुछ बदल गया है।

सेटेलाइट की गति से दौड़ते हुए इस वैज्ञानिक युग की नित्य नवीनता परिवर्तनशीलता एवं नवीन मूल्यों की पुर्नस्थापना को रूपायित करने के लिए संसार के श्रेष्ठ चिंतक साहित्यकारों ने अपने विचारों के संवाहक के रूप में इस विद्या को सभी जनों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में मैंने प्रेमचंद जी के राजीनितक चेतना के माध्यम से उनके निबंधों और पत्र-पत्रिकाओं की गति-परिणति के पीछे के उन्हीं के स्पंदनों को स्पष्ट करने का एक विनीत प्रयास भर किया है। अंत में मेरा निष्कर्ष है कि प्रेमचंद जी जिस समय में जी रहे थे, उसे वे अपनी समझ के अनुसार पूरी सजगता, भावप्रवणता और ईमानदारी के साथ जी रहे थे। प्रेमचंद का प्रयोगधर्मी कलाकार समय के प्रति सतत सचेष्ट और जागरूक रहा था और यही कारण है कि प्रथम विश्वयुद्ध से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध तक के पूर्व तक के काल के लिए उनका कथा साहित्य भारतीय जीवन का सबसे बड़ा और सबसे प्रमाणिक कोश के रूप में जाना जाता है।

संदर्भ-सूची :-

1-हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य - अज्ञेय, पृष्ठ-202

2- साहित्य का उद्देश्य : प्रेमचंद ; पृष्ठ-10

3- प्रेमचंद विरासत का सवाल : शिवकुमार मिश्र ; पृष्ठ-17

4- पत्रिका : हिन्दुस्तान - कृपाशंकर चौबे ; 30 जुलाई 2009

5- पत्रिका : हिन्दुस्तान - कृपाशंकर चौबे ; 30 जुलाई 2009

आकार साहित्य

English Books :

1- A Sketch of Histroy of India – Henry Dodwell, 1925
2- A century of social reforms in India – S. Natrajan, 1959
3- British Paramounty and Indian Renaissance – R. C. Majumdar,

Vol, X, 1963 ; Vol-IX. 1963

4- Class Struggal – J. B. Kriplani , 1958
5- Congress Presidential Address.
6- History of the Indian Association – J. C Bagal, 1963
7- History of the freedom movement in India – R. C. Majumdar
8- India To - day – R. P. Dutta, 1947
9- Our Economic Problem ---- Wadia and Merchant. 1956
10- Premchnad – Madan Gopal. 1944
11- Raja Rammohan Roy and rogressive movement in India ----(1775-1835) – 19
12- The position of women in Hindu Civilisation --- Dr. A. S. Altekar , 1956
13- The India National Movement ---- Nimai Sadhan Bose. 1965

हिन्दी पुस्तकें :

1- कलम का सिपाही	अमृतराय	:1962
2- कलम का मजदूर	मदन गोपाल	:1965
3- कांग्रेस का इतिहास : भाग-1;	डॉ. पट्टाभि सीतारमैया	:1948
4- कांग्रेस का इतिहास : भाग-2;	डॉ. पट्टाभि सीतारमैया	:1948
5- कांग्रेस का इतिहास : भाग-3;	डॉ. पट्टाभि सीतारमैया	:1948
6- प्रेमचंद और उनका युग	डॉ. राम विलास शर्मा	:1955
7- प्रेमचंद एक विवेचन	डॉ. इन्द्रनाथ मदान	
8- प्रेमचंद जीवन और कृतित्व	हंसराज रहबर	:1951
9- प्रेमचंद चिंतन और कला	डॉ. इन्द्रनाथ मदान	
10- प्रेमचंद और गाँधीवाद	रामदीन गुप्त	:1961
11- प्रेमचंद घर में	शिवरानी देवी	:1956
12- प्रेमचंद साहित्यिक विवेचन	नंददुलारे बाजपेयी	:1952
13- प्रेमचंद	डॉ. त्रिलोकी नाथ दीक्षित	:1952
14- विश्व इतिहास की झलक	जवाहरलाल नेहरू	:1962
15- प्रेमचंद विविध प्रसंग : भाग - 1	अमृतराय	:1962
16- प्रेमचंद विविध प्रसंग : भाग - 2	अमृतराय	:1962
17- प्रेमचंद विविध प्रसंग : भाग - 3	अमृतराय	:1962
18- समय और संस्कृति	श्यामाचरण गुप्त	:1996
19- प्रेमचंद विरासत का सवाल	डॉ. शिवकुमार मिश्र	:1981

20- प्रेमचंद	सं. सत्येन्द्र	:1976
21- आधुनिक भारत	सुमित सरकार	:1993
22- प्रेमचंद पत्रों में	सं. मंगलमूर्ति	:2005
23- प्रेमचंद विचारधारा और साहित्य	डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय	:2003
24- बाजारवाद और जनतंत्र	प्रफुल्ल कोलख्यान	:2006
25- भारतीय राष्ट्रवाद और प्रेमचंद	जितेन्द्र श्रीवास्तव	:2003
26- भूमण्डलीकरण और स्त्री	कुमार भास्कर	:2008
27- मुख्यधारा और दलित साहित्य	ओमप्रकाश वाल्मीकि	:2009

प्रेमचंद साहित्य

उपन्यास :- सेवासदन (1918), कायाकल्प (1920), वरदान (1921), प्रेमाश्रम(1922), रंगभूमि (1924), निर्मला (1927), प्रतिज्ञा (1929), गबन (1931), कर्मभूमि (1932), गोदान (1936), मंगलसूत्र अपूर्ण मरणोंपरांत प्रकाशित (1948)।

कहानी :- सप्तसरोज (1917), मानसरोवर 8 भाग में प्रायः 300 कहानियाँ संकलित।

नाटक :-संग्राम (1923), कर्बला (1924)

एकांकी :- प्रेम की वेदी (1933)

आलोचना :-साहित्य का उद्देश्य

निबंध :- महाजनी सभ्यता, उपन्यास, कुछ विचार

पत्रकारिता :-माधुरी (1928-31), हंस (1930), जागरण (1932), चिट्ठी-पत्री चार भागों में।

-कुछ बालोपयोगी पुस्तकें।

-मंगलाचरण